ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-2* Issue-9* October- 2017
Innovation The Research Concept

भारतीय परिप्रेक्ष्य में मानवाधिकार एवं भारत में मानवाधिकारों से संबंधित घटनाओं के कालक्रम

पूनम बजाज
व्याख्याता,
समाजशास्त्र विभाग,
चौधरी बल्लूराम गोदारा
राजकीय कन्या स्नातकोत्तर
महाविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान

सारांश

मानव अधिकार ऐसे अधिकार हैं जो प्रत्येक मनुष्य को केवल मनुष्य होने के नाते प्राप्त होने चाहिए, चाहे इसके लिए उपयुक्त कानूनी व्यवस्था की गई हो या नहीं। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में सनातन धर्म के रूप में मानव मात्र की गरिमा का ध्यान रखते हुए मानवाधिकारों पर विचार किया गया था। प्रस्तुत पत्र में भारतीय परिप्रेक्ष्य में मानवाधिकार एवं राष्ट्रपिता गांधी, जवाहर लाल नेहरू, संविधान निर्माता डॉ. अम्बेडकर के विचारों को इस परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है साथ ही भारत में मानवाधिकारों से संबंधित घटनाओं के कालक्रम बताये गये हैं।

मुख्य शब्द : मानवाधिकार, संस्कृति, घटनाक्रम, राष्ट्रीय आंदोलन, धार्मिक, राजनैतिक, कुप्रथाएं, लोककल्याणकारी राज्य।

प्रस्तावना

भारतीय परिप्रेक्ष्य में मानवाधिकार

भारत की सभ्यता एवं संस्कृति पांच हजार वर्षों से भी अधिक प्राचीन है। प्राचीन भारत में धर्म की अवधारणा में ही व्यापक मानवीय सामाजिक व्यवस्था के रूप में मानव अधिकारों पर विचार किया गया था। प्राचीन भारत में सनातन धर्म का विधान न केवल धार्मिक एवं नैतिक था, अपितु राजा के व्यवहार, दण्ड विधान आदि को भी नियंत्रित करता था। विधि के सामने समानता एवं विधियों का समान संरक्षण भी पश्चिमी अवधारणा के अनुसार ही प्राचीन भारतीय राज्य व्यवस्था में संचालित होता था।

प्राचीन भारतीय ग्रंथों में इस बात पर बल दिया कि 'सत्य एक है' तथा परमात्मा सभी आत्माओं में विद्यमान रहता है। महाभारत का तो यह सूत्र वाक्य ही है कि 'मनुष्य से बड़ा कुछ भी नहीं है।' 'श्री मद्भगवत् गीता' मानव के लिए उसके कर्त्तव्य का पालन करने का संदेश देती है। जैन धर्म के 24वें तीर्थकर महावीर स्वामी ने 'व्यक्तिगत स्वतंत्रता' पर विशेष बल दिया, चाणक्य ने अपने ग्रंथ अर्थशास्त्र में राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक विधान का प्रतिपादन किया। सम्राट अशोक का राजदर्शन–दया, मानवता, करूणा, प्रेम व अन्य मानवीय सिद्धान्तों पर आधारित था।

मध्यकालीन भारत में भी मानव अधिकार किसी न किसी रूप में विद्यमान थे। मुगलकालीन भारत में अकबर और जहांगीर की न्यायप्रियता प्रसिद्ध रही है। इस काल में भक्ति आंदोलन का लक्ष्य भी धार्मिक भेदभाव को मिटाकर सबके साथ प्रेम एवं सहयोग काना था। अकबर ने जिस ईश्वरीय धर्म का सभारम्भ किया उसके पुत्र–पौत्रादि ने इसमें कोई रूचि नहीं ली। औरंगजेब ने इसका प्रबल विरोध किया। यहीं से व्यक्ति की गरिमा से धार्मिक प्रश्न भी जुड़ गए। अनेक समर्थ व्यक्तियों ने धर्म के आधार पर राजनैतिक स्तर के आंदोलन उत्पन्न किये। पंजाब में यह धार्मिक ज्वार सिक्ख जाति में आया तो दक्षिण में मराठा जाति में। परन्तु राजपूताना जाति में नहीं। मराठों के दमन में औरंगजेब की अधिकांश शक्ति नष्ट हो गई और सिक्खों के दमन में तो उसने सारी सीमाएं लांघ दी। गुरू तेग बहादुर का उसने चांदनी चौंक में सिर कटवा दिया। बहादुर शाह जफर के काल में धार्मिक समन्वयवाद राजनैतिक मूल्य के रूप में प्रकट हुआ। लेकिन सन् 1857 की क्रांति की असफलता ने इस समन्वय को दुर्बल कर दिया और अंग्रेंजो ने इसे पुनः पनपने नहीं दिया। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आंदोलन दो धाराओं में विभक्त हो गया। भारत के राष्ट्रीय आंदोलन ने सदैव शोषण के विरुद्ध संघर्ष किया। यह संघर्ष मानव अधिकारों और मानवता के लिए संघर्ष था इसमें केवल राजनीतिक आजादी की मांग ही नहीं सामाजिक और आर्थिक आजादी की मांग भी थी। मध्यकालीन सामाजिक बुराईयां जैस सतीप्रथा, बाल–विवाह, जाति–प्रथा तथा अन्य अमानवीय कुप्रथाओं के विरुद्ध इस युग में

मानवतावादी आंदोलन शुरू हुआ। राजाराम मोहनराय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, ज्योतिषा फूले, नारायण गुरू, डॉ. अम्बेडकर एवं महात्मा गांधी जैसे धार्मिक एवं समाज सुधारकों ने मानव की गरिमा को स्थापित करने के लिए सतत् संघर्ष किया।

स्वतंत्र भारत के नीति निर्माताओं ने देश में मानवाधिकारों का समर्थन करते हुए राज्य के लोक कल्याणकारी सिद्धान्त को अपनाया है। सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक रूप से व्याप्त गहरी विषमता को कम करना मानव अधिकार एवं गरिमा के लिए अनिवार्य है।

भारत देश के विशाल आकार और विविधता, विकासशील तथा संप्रभुता सम्पन्न धर्म निरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणतंत्र के रूप में इसकी प्रतिष्ठा तथा एवं भूतपूर्व औपनिवेशिक राष्ट्र के रूप में इसके इतिहास के परिणामस्वरूप भारत में मानवाधिकारों की परिस्थिति एक प्रकार से जटिल हो गई है। भारत का संविधान मौलिक अधिकार प्रदान करता है जिसमें धर्म की स्वतंत्रता भी शामिल है। संविधान की धाराओं में बोलने की आजादी के साथ–साथ कार्यपालिका और न्यायपालिका का विभाजन तथा देश के अन्दर एवं बाहर आने–जाने की भी आजादी दी गई है।

भारतीय संविधान के निर्माता डॉ. भीमराव अम्बेडकर, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी तथा प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू सभी के चिंतन में मानव के संबंध में अवधारित विश्व मूल्यों से ओतप्रोत थे। इन्हीं का मौलिक चिंतन अब नये मोड़ ले रहा है।

अध्ययन का उद्देश्य

इस अध्ययन या शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य यह बताना है कि भारत में मानवाधिकार किस कालक्रम में विकसित हुए उनकी मूल अवधारणा के रूप में विभिन्न भारतीय चिंतकों के इस तथ्य को रखा गया है कि ये अधिकार तो बालक को जन्म लेने से पूर्व ही प्राप्त हो जाते हैं। सभी मनुष्य को एक समान अधिकार प्राप्त है उनके बीच विभेद हमारी मानसिकता द्वारा किया हुआ है। प्रत्येक मानव को मानव होने के नाते प्राप्त अधिकारों की चर्चा करते हुए भारत में मानवाधिकारों से संबंधित घटनाओं के कालक्रम प्रस्तुत किये गये हैं।

गांधीवादी चिन्तन

गांधी जी आधुनिक युग की एक विलक्षण विभूति थे। वे एक ऐसे विचारक थे जिन्होंने अपने समय के अधिकांश अनुमानों तथा विश्वासों को चुनौती दी थी। गांधीजी पश्चिम की अपेक्षा भारतीय सभ्यता के प्रशंसक थे क्योंकि विश्व में व्यक्ति के स्थान से संबंधित सभ्यता में भारतीय सभ्यता का दृष्टिकोण अधिक संतोषजनक था। गांधीजी का कहना था कि किसी भी लोकतंत्र में सबसे कमजोर व्यक्ति को भी वे ही अवसर उपलब्ध होने चाहिए जो सबसे बलवान को होते हैं। वे शक्ति के विकेन्द्रीकरण के पक्ष में थे। उन्होंने व्यक्ति को केन्द्र में रखते हुए हर एक व्यक्ति तक उसकी आवश्यकता का भाग पहुंचाने की बात कही। गांधीजी का सत्य एवं अहिंसा का मार्ग, पश्चिमी सभ्यता की समालोचना एवं भारतीय सभ्यता की प्रशंसा, व्यक्ति को आत्मारूवरूप मान स्वतंत्रता एवं राज्य संबंधी विचार, आर्थिक संगठन में प्रत्येक सदस्य की भागीदारी, श्रम पर बल, सम्पति एवं वस्तुओं के संग्रहण का विरोध, ट्रस्टीशिप की अवधारणा तथा घृणा के बदले प्रेम की शक्तियां विकसित करने पर बल, स्वराजय एवं नेतृत्व में नैतिकता पर बल, भी प्रकार अपने कर्त्तव्यों का पालन और अधिकारों के सचेतता मानवाधिकारों का ही रूप प्रदर्शित करती है।

नेहरू का चिन्तन

नेहरू सक्रिय राजनीतिज्ञ, बुद्धिजीवी अधिकारों के प्रति सजग व्यक्तित्व थे। स्वाधीनता आंदोलन में नेहरू जिस दर्शन से प्रभावित रहे, वही स्वाधीनता के संघर्ष का आधार और भारत के संविधान में वही मानव अधिकार के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। ब्रिटिश राज का दम चक्र सबसे अधिक व्यक्ति के अधिकारों पर चला और इसी कारण स्वाधीनता के संघर्ष में व्यक्ति की गरिमा का प्रमुख नेताओं ने 1895 में भारत का संवैधानिक विधेयक तैयार किया जिसमें कुछ मूल अधिकारों का समावेश किया गया। अगस्त 1918 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने मुम्बई अधिवेशन में यह मांग रखी कि ब्रिटिश नागरिक के रूप में भारत के लोगों के अधिकारों की घोषणा हो। 1926 में आयरलैण्ड के संविधान में मूल अधिकारों की घोषणा को प्रविष्ठ किया गया। सन् 1928 में नेहरू समिति के प्रतिवेदन में, 1932 में कराची अधिवेशन में, 1944–45 की सप्र समिति सभी के मूल अधिकारों की पुरजोर अनुशंसा की। संविधान के भाग तीन के मूल अधिकारों एवं भाग चार के नीति निर्देशक तत्वों के रूप में आर्थिक शोषण से सतप्त समाज को मुक्ति दिलाने के आदर्शों के रूप में इनकी स्थापना हुई।

व्यक्ति की गरिमा के संबंध में नेहरू के चिन्तन में यही पृष्ठभूमि रही और व्यक्ति की यही छवि संविधान में भली प्रकार चित्रित हुई। सुखी और समृद्ध जीवन के आधुनिक मानदण्ड ही नेहरू के व्यक्तित्व की गरिमा के लक्षण थे। इस दर्शन में व्यक्ति की गरिमा के दो पक्ष थे एक राजनैतिक दूसरा सामाजिक और आर्थिक पक्ष था। प्रत्येक व्यक्ति को एक स्तरीय जीवन स्तर उपलब्ध करवाने संबंधी वचनों के लिए नेहरू ने तेजगति से औद्योगीकरण किया। पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से संविधान के भाग 4 के संकल्पों को पूर्ण करने का प्रयत्न किया।

डॉ. अम्बेडकर का चिन्तन

दलितवाद और भारत के दलित आंदोलन में डॉ. अम्बेडकर मसीहा के रूप में प्रख्यात रहे है। मानव मात्र के प्रति सामाजिक स्तर पर होने वाली असमानता से वे बहुत उद्वेलित रहते थे। उन्होनें सवर्णों द्वारा किये जा रहे अन्याय के प्रति हिन्दुओं के दलित वर्ग को जागरूक बनाया और मानव–मानव में भेदभाव को गलत बताया। इस संदर्भ में उन्होनें वर्ण व्यवस्था की कठोर शब्दों में आलोचना की, कहा कि एक ऐसी न्याययुक्त सामाजिक व्यवस्था की आवश्यकता है किसी प्रकार के भेदभाव के बिना सम्मानजनक स्थान प्राप्त हो। जाति प्रथा पर कड़े प्रहार करते हुए उन्होनें कहा कि जाति मानव–मानव में भेद जन्म से ही पैदा कर देती है यह व्यवस्था अनैतिक और अन्यायकारी है अस्पृश्यता को समाज के लिए कलंक, अभिशाप मानते हुए उन्होनें कहा कि क्यों कुछ मानव

ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-2* Issue-9* October- 2017
Innovation The Research Concept

सामाजिक अधिकारों से वंचित कर दिये जाते है जबकि मानवाधिकारों की तो संकल्पना ही प्रत्येक मानव के मानव होने के नाते प्राप्त अधिकारों से है। वे मानव मात्र के अधिकारों के प्रबल समर्थक थे। इन्होनें अधिकारों की संवैधानिक घोषणा के साथ–साथ उनका उल्लंघन किये जाने से रोकने के लिए संवैधानिक उपचारों की आवश्यकता पर बल दिया।

इस प्रकार से इस शोध पत्र में भारतीय परिप्रेक्ष्य में मानवाधिकारों को लेते हुए यह स्पष्ट है कि मानव अधिकार ऐसे अधिकार हैं जो प्रत्येक मनुष्य को केवल मनुष्य के नाते प्राप्त होने चाहिए, चाहे इसके लिए उपयुक्त कानूनी व्यवस्था की गई हो या न की गई हो जबकि नागरिक अधिकार ऐसे अधिकार हैं जो किसी राज्य के नागरिक को केवल नागरिकता के आधार पर प्राप्त होते हैं और जिन्हें कानून के द्वारा सुरक्षित किया जाता है। इस प्रकार मानव अधिकारों का विचार क्षेत्र नागरिक अधिकार की तुलना में अत्यन्त विस्तृत है। देखा जाए तो सभ्य मनुष्य मात्र की विशेष गरिमा को मान्यता देते हैं और यही विचार मानव–अधिकारों की अवधारणा का मूल स्त्रोत है जिस समाज में जिसने ज्यादा मानव अधिकारों को नागरिक अधिकारों के रूप में स्थापित किया जाएगा वह समाज नैतिक दृष्टि से उतना ही उन्नत माना जाएगा।

भारत में मानवाधिकारों से संबंधित घटनाओं के कालक्रम

1. 1829 – प्रति की मृत्य के बाद रूढ़िवादी हिन्दू दाह संस्कार के समय उसकी विधवा के आत्म–दाह की चली आ रही सती–प्रथा को राजा राममोहन राय के ब्रह्मों समाज जैसे हिन्दू सुधारवादी आंदोलनों के वर्षों प्रचार के पश्चात गवर्नर जनरल विलियम बैंटिक ने औपचारिक रूप से समाप्त कर दिया।
2. 1929 – बाल–विवाह निषेध अधिनियम में 14 साल से कम उम्र के नाबालिकों के विवाह पर निषेधाज्ञा पारित कर दी गई।
3. 1947 – भारत के ब्रिटिश राज से राजनीतिक आजादी हासिल की।
4. 1950 – भारत के संविधान ने सार्वभौमिक व्यस्क मताधिकार के साथ संप्रभता संपन्न लोकतांत्रिक गणराज्य की स्थापना की। संविधान के खण्ड 3 में उच्चत्तम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय मौलिक अधिकारों का विधेयक अन्तर्मुक्त है। यह शिक्षा, रोजगार और राजनीतिक प्रतिनिधित्व से पूर्ववर्ती वंचित वर्गों के लिए आरक्षण का प्रावधान भी करता है।
5. 1952 – आपराधिक जनजति अधिनियम की पूर्ववर्ती ''आपराधिक जनजातियों को अनधिसूचित'' के रूप में सरकार द्वारा वर्गीकृत किया गया तथा आभ्यासिक अपराधियों का अधिनियम (1952) पारित हुआ।
6. 1955 – हिन्दुओं से संबंधित परिवार के कानून में सुधान ने हिन्दू महिलाओं को अधिक अधिकार प्रदान किए।
7. 1958 – सशस्त्र बल (विशेष अधिकार) अधिनियम, 1958[3]
8. 1973 – भारत का उच्चत्तम न्यायालय, केशवानन्द भारती के मामले में यह कानून लागू करता है कि संविधान की मौलिक संरचना कई मौलिक अधिकारों सहित संवैधानिक संशोधन के द्वारा अपरिवर्तनीय हैं
9. 1975 – 77– भारत में आपातकाल की स्थिति अधिकारों के व्यापक उल्लंघन की घटनाए घटीं।
10. 1978 – मेनका गांधी बनाम भारत संघ के मामले में उच्चत्तम न्यायालय ने यह कानून लागू किया कि आपात–स्थिति में भी अनुच्छेद 21 के तहत जीवन (जीने) के अधिकार का निलंबित नहीं किया जा सकता।
11. 1978 – जम्मू और कष्मीर जन सुरक्षा अधिनियम, 1978[4][5]
12. 1984 – ऑपरेशन ब्लू स्टार और उसके तत्काल बाद 1984 के सिख विरोधी दंगे।
13. 1985 – 86 – शाहबानो मामला जिसमें उच्चत्तम न्यायालय ने तलाक–शुदा मुस्लिम महिला के अधिकार को मान्यता प्रदान की जिसने मौलानाओं में विरोध की चिंगारी भड़का दी, उच्चत्तम न्यायालय के फैसले को अमान्य करार करने के लिए राजीव गांधी की सरकार ने मुस्लिम महिमा (तलाक पर अधिकार का संरक्षण) अधिनियम 1986 पारित किया।
14. 1989 – अनुसूचित जाति और अनुसचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 पारित किया गया।
15. 1989 – वर्तमान कश्मीरी बगावत ने कश्मीरी पंडितों का नस्ली तौर पर सफाया, हिन्दु मंदिरों को नष्ट–भ्रष्ट कर देना, हिन्दुओं और सिखों की हत्या तथा विदेशी पर्यटकों और सरकारी कार्यकर्ताओं का अपहरण देखा।
16. 1992 – संविधानिक संषोधन ने स्थानीय स्वशासन (पंचायती राज) की स्थापना तीसरे तले (दर्जे) के शासन के ग्रामीण स्तर पर की गई जिसमें महिलाओं के लिए एक–तिहाई सीट आरक्षित की गई। साथ ही साथ अनुसूचित जातियों के लिए प्रावधान किये गए।
17. 1992 – हिन्दू–जनसमूह द्वारा बाबरी मस्जिद ध्वस्त कर दिया गया, परिणामस्वरूप देश भर में दंगे हुए।
18. 1993 – मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम के अन्तर्गत राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की स्थापना की गई।
19. 2001 – उच्चत्तम न्यायालय ने भोजन का अधिकार लागू करने के लिए व्यापक आदेश जारी किए।[6]
20. 2002 – गुजरात में हिंसा, मुख्य रूप से मुस्लिम अल्पसंख्यक को लक्ष्य कर, कई लोगों की जाने गई।
21. 2005 – एक सशक्त सूचना का अधिकार अधिनियम पारित हुआ ताकि सार्वजनिक अधिकारों के अधिकार क्षेत्र में संघटित सूचना तक नागरिक की पहुंच हो सके।[7]
22. 2005 – राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गांरटी अधिनिमय (एनआरईजीए) रोजगार की सार्वभौमिक गारंटी प्रदान करता है।
23. 2006 – उच्चत्तम न्यायालय भारतीय पुलिस के अपर्याप्त मानवाधिकारों को प्रतिक्रया स्वरूप पुलिस सुधार के आदेश जारी किए।[8]

24. 2009 – दिल्ली उच्च न्यायालय ने भारतीय दण्ड संहिता की धारा 377 की घोषणा की जिसने अनिर्दिष्ट ''अप्राकृतिक' यौनाचरणों के सिलसिले को ही गैरकानूनी करार कर दिया, लेकिन जब यह व्यक्तिगत तौर पर दो लोगों के बीच सहमति के साथ समलैंगिक यौनाचरण के मामले में लागू किया गया तो असंवैधानिक हो गया ताकि भारत में इसने समलैंगिक संपर्क को प्रभावी तरीके से अलग–अलग भेदभाव कर देखना शुरू किया। [9]

निष्कर्ष

सभी नागरिकों के शुभ की कामना करने वाली वैदिक मान्यताओं के साथ मानव मूल्यों एवं मानवाधिकारों को सामाजिक जीवन का मूल आधार मानने वाला हमारा देश मानवाधिकारों के प्रति भी सैद्धांतिक और व्यवहारिक रूप से कार्यरत है। मानवाधिकारों को वैधानिक दृष्टि से संविधान में स्थापित किया गया है। हमारे देश में मानव मूल्यों व सांस्कृतिक अवधारणाओं के साथ ही संयुक्त राष्ट्र संघ की सार्वभौमिक घोषणा का रचनात्मक प्रभाव पड़ा है। प्रस्तुत पत्र में 19वीं सदी से प्रारम्भ कर भारत में मानवाधिकारों से संबंधित घटनाओं के कालक्रम प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। यह निर्विवाद सत्य है कि जिस समाज में जितने ज्यादा मानवाधिकार को नागरिक वह समाज नैतिक दृष्टि से उतना ही उन्नत माना जाएगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *डॉ. जी. पी. नेमा, डॉ. के. के. शर्मा, मानवाधिकार सिद्धान्त एवं व्यवहार, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।*
2. *डॉ. सुरेन्द्र कटारिया, मानवाधिकार, सभ्य समाज एवं पुलिस, आर.बी.एस.ए., पब्लिशर्स, जयपुर।*
3. *डॉ. तपेश्वरी प्रसाद त्रिपाठी, मानवाधिकार एवं अन्तर्राष्ट्रीय विधि,इलाहाबाद लॉ एजेन्सी पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद।*
4. *श्री महेन्द्र कुमार मिश्रा, भारत का संविधान एवं मानवाधिकार सागर पब्लिशर्स, जयपुर।*
5. *प्रमाण रिसर्च जनरल, वर्ष–3, अंक–9, जुलाई–सितम्बर–2013,आई एस एस एन नं.–2249– 2976*